International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

भारत की विदेश नीति में बदलते वैश्विक शक्ति संतुलन की भूमिका: चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

डॉ. वंश गोपाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, गोस्वामी तुलसीदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्वी, चित्रकूट (उ.प्र.)

सारांश
इक्कीसवीं सदी में वैश्विक शक्ति संतुलन एकध्रुवीय क्षण से बहुध्रुवीयता की ओर खिसक रहा है। अमेरिका और चीन की प्रतिस्पर्धा, रूस की सक्रिय भूमिका, हिंद-प्रशांत का उभार तथा वैश्विक दक्षिण की बढ़ती आवाज़ ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति की संरचना बदल दी है। यह शोध-पत्र विश्लेषण करता है कि इस परिवर्तन ने भारत की विदेश नीति को किस प्रकार प्रभावित किया है और भारत किन रणनीतियों से इसका सामना कर रहा है। निष्कर्ष बताते हैं कि भारत की प्रमुख चुनौतियाँ सीमा-सुरक्षा, महाशक्तियों के बीच संतुलन, ऊर्जा-निर्भरता और क्षेत्रीय अस्थिरता हैं, जबकि रणनीतिक स्वायत्तता, बहुपक्षीय सहयोग, आर्थिक कूटनीति और वैश्विक दक्षिण का नेतृत्व उसके प्रमुख अवसर हैं। पत्र का तर्क है कि भारत के लिए सबसे उपयुक्त मार्ग "बहु-संरेखण" है, जिसमें लचीलापन, आत्मनिर्भरता, संस्थागत क्षमता-निर्माण और पड़ोस में विश्वास-निर्माण केंद्रीय हों। अंत में पत्र व्यावहारिक नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत करता है, जिनमें क्षमता-निर्माण, पड़ोस-प्रथम नीति, समुद्री सुरक्षा, आपूर्ति-शृंखला विविधीकरण और वैश्विक दक्षिण के लिए ठोस एजेंडा शामिल हैं, जो नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी हैं।

प्रमुख शब्द (Keywords): भारतीय विदेश नीति, शक्ति संतुलन, बहुध्रुवीयता, रणनीतिक स्वायत्तता, हिंद-प्रशांत, वैश्विक दक्षिण

1. प्रस्तावना

किसी राष्ट्र की विदेश नीति उसके राष्ट्रीय हितों, भौगोलिक स्थिति, आर्थिक क्षमता और अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की संरचना से आकार लेती है, और जब वैश्विक शक्ति-संतुलन बदलता है तो नीति का पुनर्मूल्यांकन अनिवार्य हो जाता है। आज अमेरिका की एकध्रुवीय श्रेष्ठता के बाद चीन के उदय, रूस की सक्रियता और उभरती अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती भूमिका ने भारत के सामने नई परिस्थितियाँ खड़ी की हैं। स्वतंत्रता के बाद से गुटनिरपेक्षता, सुरक्षा-यथार्थवाद, आर्थिक उदारीकरण और रणनीतिक साझेदारियों के रास्ते बहु-संरेखण तक भारतीय विदेश नीति के विकास का सार प्रस्तुत किया गया है, जिसे तालिका 1 में संक्षेप में दर्शाया गया है। फिर शक्ति-संतुलन की अवधारणा को कठोर, कोमल और स्मार्ट शक्ति जैसे विचारों तथा नियमों और संस्थाओं के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया के रूप में समझाया गया है। अंत में शोध के चार उद्देश्य और वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक पद्धति का उल्लेख है.

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

1.1 अध्ययन की पृष्ठभूमि

शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिका की एकध्रुवीय श्रेष्ठता का दौर आया, किंतु पिछले दो दशकों में चीन के आर्थिक-सैन्य उदय, रूस की सक्रियता और उभरती अर्थव्यवस्थाओं की बढ़ती भूमिका ने इस श्रेष्ठता को चुनौती दी है। ज़कारिया (2011) ने इसी प्रवृत्ति को "शेष विश्व के उदय" के रूप में रेखांकित किया, जिसमें शक्ति का वितरण अधिक विकेंद्रित होता जा रहा है।

भारत इस परिवर्तन के केंद्र में स्थित एक ऐसा राष्ट्र है जो एक ओर विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या और तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में गिना जाता है, तो दूसरी ओर जटिल पड़ोस, अनसुलझे सीमा-विवादों और विकास-संबंधी अपेक्षाओं से जूझ रहा है। इसलिए भारत की विदेश नीति केवल कूटनीतिक अभ्यास नहीं, बल्कि आर्थिक विकास, सुरक्षा और वैश्विक प्रतिष्ठा के बीच संतुलन साधने का साधन है। इस अध्ययन की पृष्ठभूमि यही है कि बदलते शक्ति-समीकरण भारत के लिए एक साथ जोखिम और अवसर लेकर आए हैं।

1.2 भारत की विदेश नीति का ऐतिहासिक विकास

भारत की विदेश नीति के शिल्पकार जवाहरलाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता को आधार बनाया और द्विध्रुवीय शीतयुद्ध के दौर में भारत ने किसी सैन्य गुट में शामिल न होने का निर्णय लिया ताकि निर्णय-स्वातंत्र्य बना रहे और संसाधन विकास पर केंद्रित हो सकें। गांगुली (2010) के संपादित संकलन के अनुसार, इस दौर में आदर्शवाद और यथार्थवाद का मिश्रण दिखता है: एक ओर उपनिवेशवाद-विरोध और निरस्त्रीकरण की वकालत, दूसरी ओर 1962 के चीन युद्ध जैसे अनुभवों ने सुरक्षा-यथार्थवाद की आवश्यकता सिखाई।

1970 और 1980 के दशकों में भारत का झुकाव सोवियत संघ की ओर बढ़ा, विशेषकर 1971 की मैत्री संधि और बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के संदर्भ में। 1991 में सोवियत विघटन और आर्थिक संकट ने बड़ा मोड़ दिया। आर्थिक उदारीकरण के साथ भारत ने अमेरिका, पूर्वी एशिया और यूरोप के साथ संबंध गहरे किए तथा "पूर्व की ओर देखो" नीति शुरू की। मैलोन (2011) दर्शाते हैं कि इस चरण में भारतीय नीति-निर्माताओं ने वैचारिक कठोरता छोड़कर व्यावहारिकता अपनाई, और 1998 के परमाणु परीक्षणों के बाद भारत ने स्वयं को एक उभरती शक्ति के रूप में प्रस्तुत करना शुरू किया।

इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में अमेरिका के साथ असैन्य परमाणु समझौते ने संबंधों में नया खोला। इसी समय "गुटनिरपेक्षता 2.0" (खिलनानी एवं अन्य, 2012) जैसे विमर्श ने सुझाया कि भारत को पुराने गुटनिरपेक्ष मॉडल की नकल के बजाय बदली परिस्थितियों में रणनीतिक स्वायत्तता, आर्थिक क्षमता-निर्माण और बहु-दिशात्मक साझेदारियों की नई रूपरेखा चाहिए। इस प्रकार भारत की विदेश नीति निरंतरता और परिवर्तन के बीच विकसित होती रही है।

भारतीय विदेश नीति के ऐतिहासिक चरणों को नीचे तालिका 1 में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें 2014 के बाद का चरण लेखक का विश्लेषण है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

तालिका 1: भारतीय विदेश नीति के प्रमुख चरण

कालखंड	प्रमुख नीति-दिशा	मुख्य विशेषताएँ
1947–1962	गुटनिरपेक्षता और आदर्शवाद	उपनिवेशवाद-विरोध, निरस्त्रीकरण की वकालत, निर्णय-स्वातंत्र्य पर बल
1962–1991	सुरक्षा-यथार्थवाद और सोवियत निकटता	1962 के अनुभव के बाद रक्षा पर ध्यान, 1971 की मैत्री संधि
1991–2000	आर्थिक उदारीकरण और व्यावहारिकता	"पूर्व की ओर देखो" नीति, अमेरिका और यूरोप से संबंध, 1998 के परमाणु परीक्षण
2000–2014	रणनीतिक साझेदारियाँ	असैन्य परमाणु समझौता, गुटनिरपेक्षता 2.0 जैसा विमर्श
2014 के बाद	बहु-संरेखण	क्वाड, ब्रिक्स और एससीओ में एक साथ भागीदारी, रणनीतिक स्वायत्तता पर बल

स्रोत: गांगुली (2010), मैलोन (2011) और खिलनानी एवं अन्य (2012) के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

1.3 बदलते वैश्विक शक्ति संतुलन की अवधारणा

शक्ति संतुलन की परंपरागत अवधारणा यह मानती है कि राज्य किसी एक शक्ति के वर्चस्व को रोकने के लिए आंतरिक क्षमता-वृद्धि या बाह्य गठबंधन का सहारा लेते हैं। किंतु वर्तमान संदर्भ में शक्ति के स्वरूप अधिक बहुआयामी हो गए हैं। जोसेफ नाई (2011) ने "कठोर शक्ति" (सैन्य-आर्थिक) और "कोमल शक्ति" (संस्कृति, मूल्य, संस्थाएँ) के साथ "स्मार्ट शक्ति" की धारणा रखी और बताया कि शक्ति का संक्रमण केवल राज्यों के बीच नहीं, बल्कि राज्यों से गैर-राज्य अभिकर्ताओं की ओर भी हो रहा है।

हेनरी किसिंजर (2014) ने अपनी कृति में तर्क दिया कि विश्व-व्यवस्था की स्थिरता वैधता और शक्ति-संतुलन के सामंजस्य पर टिकी होती है, और जब यह सामंजस्य टूटता है तो अस्थिरता बढ़ती है। आचार्य (2014) इससे आगे जाकर कहते हैं कि अमेरिका-केंद्रित व्यवस्था का अंत किसी एक नई महाशक्ति के प्रभुत्व में नहीं, बल्कि बहु-स्तरीय और बहु-अभिकर्ता "बहुल विश्व" में परिणत होगा। इन विचारों से स्पष्ट है कि बदलता शक्ति संतुलन केवल शक्ति का पुनर्वितरण नहीं, बल्कि नियमों, संस्थाओं और विमर्श के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया भी है।

2. साहित्य समीक्षा

साहित्य को तीन धाराओं में बाँटकर देखा गया है: ऐतिहासिक-विवरणात्मक अध्ययन, रणनीतिक अध्ययन, क्षेत्र-विशेष अध्ययन, जो चीन, पाकिस्तान और अफ़गानिस्तान जैसे संदर्भों पर केंद्रित हैं।

वैश्विक शक्ति-संतुलन पर उपलब्ध सैद्धांतिक लेखन की समीक्षा,जिसमें अमेरिकी शक्ति के सापेक्षिक क्षरण, उभरती शक्तियों के व्यवहार और बहुल विश्व की संभावना पर चर्चा हुई है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

2.1 भारत की विदेश नीति पर प्रमुख अध्ययन

भारतीय विदेश नीति पर पहली धारा ऐतिहासिक-विवरणात्मक है। गांगुली (2010) का संकलन स्वतंत्रता के बाद की नीति का मूल्यांकन करता है कि भारत की रणनीतिक संस्कृति में आदर्शवादी संकल्पों के साथ-साथ यथार्थवादी समायोजन भी निरंतर मौजूद रहे हैं। मैलोन (2011) अपनी पुस्तक में तर्क देते हैं कि भारत की विदेश नीति "हाथी के नृत्य" जैसी है, जो धीमी, सतर्क और संस्थागत सीमाओं से बँधी हुई, किंतु क्रमशः आत्मविश्वासी होती गई है। दुबे (2013) बदलते विश्व में भारत के सामने उपस्थित आर्थिक, राजनीतिक और सुरक्षा-संबंधी विकल्पों का समग्र लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं।

दूसरी धारा रणनीतिक अध्ययनों की है। खिलनानी एवं अन्य (2012) का "गुटनिरपेक्षता 2.0" दस्तावेज़ भारत के लिए एक वैकल्पिक रणनीतिक रूपरेखा सुझाता है, जबकि टेलिस (2012) इस पर आलोचनात्मक दृष्टि डालते हुए चेताते हैं कि पुरानी अवधारणा का नया रूप भारत के लिए वास्तविक शक्ति-निर्माण का विकल्प नहीं हो सकता। बाजपेयी (2014) भारत की महारणनीति की छह विचारधाराओं का वर्गीकरण करते हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि भारत में विदेश नीति पर कोई एकल सर्वसम्मति नहीं, बल्कि बहस की बहुलता है।

तीसरी धारा क्षेत्र-विशेष अध्ययनों की है। पंत (2010) चीन-भारत संबंधों को "सहयोग और प्रतिस्पर्धा" की जटिल जुगलबंदी के रूप में देखते हैं। कोहेन (2013) भारत-पाकिस्तान संबंधों को ऐसे दीर्घकालिक विवाद के रूप में विश्लेषित करते हैं जिसका समाधान केवल कूटनीतिक पहल से नहीं, बल्कि दोनों देशों की घरेलू राजनीति के रूपांतरण से जुड़ा है। फेयर (2010) अफ़गानिस्तान में भारत की भूमिका के अवसरों और बाधाओं का आकलन करती हैं।

2.2 वैश्विक शक्ति संतुलन और अंतरराष्ट्रीय संबंध

वैश्विक शक्ति संतुलन पर साहित्य मुख्यतः "उभरती शक्तियों" और "व्यवस्था-परिवर्तन" के प्रश्नों के इर्द-गिर्द घूमता है। ज़कारिया (2011) और नाई (2011) दोनों मानते हैं कि अमेरिकी शक्ति का पूर्ण पतन नहीं, बल्कि सापेक्षिक क्षरण हो रहा है, और शक्ति के नए केंद्र उभर रहे हैं। किसिंजर (2014) इस परिवर्तन में स्थिरता के संकटों की ओर संकेत करते हैं, जबकि आचार्य (2014) इसे अपेक्षाकृत अधिक समावेशी और बहुल व्यवस्था की संभावना के रूप में देखते हैं।

उभरती शक्तियों के व्यवहार पर हर्रेल (2013) का विश्लेषण महत्त्वपूर्ण है। वे बताते हैं कि उभरते राष्ट्र एक साथ पश्चिमी संस्थाओं में अधिक हिस्सेदारी चाहते हैं और अपनी अलग पहचान व स्वायत्तता भी बनाए रखना चाहते हैं। नार्लीकर (2013) भारत के संदर्भ में प्रश्न उठाती हैं कि उभरता भारत "किसके प्रति उत्तरदायी" होगा, अर्थात् वैश्विक शासन में भारत की भूमिका केवल अधिकारों की माँग तक सीमित रहेगी या वह जिम्मेदारियाँ भी स्वीकार करेगा। हिंद महासागर के संदर्भ में कैप्लन (2010) और ब्रूस्टर (2014) समुद्री भू-राजनीति को इक्कीसवीं सदी की शक्ति-प्रतिस्पर्धा का निर्णायक क्षेत्र मानते हैं।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

3. बदलता वैश्विक शक्ति संतुलन और भारत की विदेश नीति

भारत की विदेश नीति में अमेरिका और चीन की बढ़ती सामरिक प्रतिस्पर्धा को देखा गया और बताया गया है कि भारत इसमें किसी एक खेमे में बँधे बिना अपने हितों का संतुलन कैसे साधता है। बहुध्रुवीय विश्व-व्यवस्था के उदय, उसके अवसरों और अस्थिरता के जोखिमों पर विचार किया गया है। अंत में संयुक्त राष्ट्र, जी-20, ब्रिक्स और एससीओ जैसी संस्थाओं में भारत की भूमिका का मूल्यांकन है जिसमें बहुध्रुवीय होती दुनिया भारत को अधिक विकल्प देती है जिसके लिए सतर्क और सुसंगत कूटनीति आवश्यक है।

3.1 अमेरिका और चीन के बीच बढ़ती सामरिक प्रतिस्पर्धा

वर्तमान वैश्विक व्यवस्था की सबसे निर्णायक विशेषता अमेरिका और चीन के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा है, जो व्यापार, प्रौद्योगिकी, सैन्य उपस्थिति और संस्थागत प्रभाव, सभी क्षेत्रों में दिखती है। यह प्रवृत्ति 2010–2014 के साहित्य में भी पहचानी गई थी। ज़कारिया (2011) ने चीन के उदय को "शेष के उदय" की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति माना, जबकि किसिंजर (2014) ने उभरती और स्थापित शक्ति के बीच संबंधों की नाज़ुकता पर बल दिया।

भारत के लिए इस प्रतिस्पर्धा का अर्थ दोहरा है। एक ओर, चीन के साथ लंबी अनसुलझी सीमा और बढ़ती सामरिक उपस्थिति भारत को अमेरिका तथा उसके सहयोगियों के निकट लाती है। पंत (2010) ने पहले ही संकेत दिया था कि भारत-चीन संबंध सहयोग और आशंका के मिश्रण पर टिके हैं। दूसरी ओर, भारत किसी औपचारिक गठबंधन में बँधकर अपनी स्वायत्तता खोना नहीं चाहता। मोहन (2012) ने हिंद-प्रशांत में भारत-चीन प्रतिद्वंद्विता को "समुद्र मंथन" की संज्ञा देते हुए बताया कि समुद्री क्षेत्र दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा का नया रंगमंच बन रहा है। इसी कारण भारत ने क्वाड जैसे लचीले मंचों में भागीदारी के साथ-साथ ब्रिक्स और एससीओ जैसे मंचों से भी जुड़ाव बनाए रखा है। यह लेखक का विश्लेषण है कि यह दोहरा जुड़ाव "बहु-संरेखण" की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है।

इस प्रतिस्पर्धा का एक आयाम प्रौद्योगिकी और आपूर्ति-शृंखलाओं से भी जुड़ा है। नाई (2011) के अनुसार आर्थिक और सैन्य शक्ति के साथ सूचना और प्रौद्योगिकी पर नियंत्रण भी आधुनिक शक्ति का हिस्सा बनता जा रहा है, इसलिए दोनों महाशक्तियों के बीच खिंचाव केवल सैन्य मोर्चे तक सीमित नहीं रहता। भारत के लिए इसका अर्थ यह है कि उसे प्रौद्योगिकी-साझेदारी, निवेश और बाज़ार-पहुँच के प्रश्नों पर भी सोच-समझकर निर्णय लेने होंगे। लेखक का आकलन है कि यदि भारत अपनी विनिर्माण और डिजिटल क्षमता मज़बूत कर ले, तो वह इस खिंचाव को निर्भरता के बजाय अपनी मोलभाव-शक्ति बढ़ाने के अवसर में बदल सकता है।

3.2 बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था का उदय

बहुध्रुवीयता का अर्थ है कि वैश्विक निर्णय-प्रक्रिया में एक या दो नहीं, कई शक्ति-केंद्र प्रभावशाली हों। आचार्य (2014) के अनुसार यह व्यवस्था केवल राज्यों की संख्या बढ़ने से नहीं, बल्कि क्षेत्रीय संस्थाओं,

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

उभरती अर्थव्यवस्थाओं और गैर-राज्य अभिकर्ताओं की भूमिका बढ़ने से आकार ले रही है। नाई (2011) का "शक्ति-संक्रमण" और "शक्ति-प्रसार" का विचार भी इसी ओर संकेत करता है।

भारत ने बहुध्रुवीयता का सार्वजनिक रूप से समर्थन किया है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था उसे अधिक मोलभाव-शक्ति और विकल्प देती है। हालाँकि, बहुध्रुवीयता का अर्थ स्वतः स्थिरता नहीं है। किसिंजर (2014) की चेतावनी के अनुसार, बिना साझा नियमों के बहुध्रुवीय विश्व अधिक अप्रत्याशित हो सकता है। अतः भारत के लिए आवश्यक है कि वह बहुध्रुवीयता के साथ-साथ नियम-आधारित और समावेशी वैश्विक शासन का भी पक्षधर बने।

बहुध्रुवीयता का एक और पहलू क्षेत्रीय शक्ति-केंद्रों का उभार है। हर्रेल (2013) के अनुसार उभरती शक्तियाँ अपने-अपने क्षेत्रों में प्रभाव बढ़ाते हुए वैश्विक मंचों पर भी हिस्सेदारी माँगती हैं, जिससे निर्णय-प्रक्रिया अधिक जटिल हो जाती है। भारत के संदर्भ में दक्षिण एशिया और हिंद महासागर उसके निकटतम शक्ति-क्षेत्र हैं, जहाँ उसकी भूमिका उसकी वैश्विक विश्वसनीयता की पहली कसौटी है। यदि भारत अपने पड़ोस में भरोसेमंद साझेदार के रूप में स्थापित हो जाए, तो बहुध्रुवीय व्यवस्था में उसकी स्थिति अपेक्षाकृत सुदृढ़ होगी। इसके विपरीत, पड़ोस में अविश्वास बढ़ने पर बाहरी शक्तियों को हस्तक्षेप के अधिक अवसर मिल सकते हैं।

4. भारत की विदेश नीति के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ

बदलते शक्ति-संतुलन के बीच भारत की विदेश नीति के सामने पहली चुनौती राष्ट्रीय सुरक्षा और सीमा से जुड़ी है, जिसमें चीन और पाकिस्तान के साथ अनसुलझे विवाद तथा जल-संसाधन जैसे नए आयाम शामिल हैं। दूसरी चुनौती अमेरिका, चीन और रूस जैसी महाशक्तियों के साथ एक साथ संतुलित संबंध बनाए रखने की है, जहाँ स्वायत्तता और साझेदारी के बीच नाज़ुक संतुलन चाहिए। तीसरी चुनौती ऊर्जा-सुरक्षा, व्यापार और आर्थिक निर्भरता की है, विशेषकर आयातित ऊर्जा और आपूर्ति-शृंखलाओं के संदर्भ में। चौथी चुनौती पड़ोस की राजनीतिक अस्थिरता और बाहरी शक्तियों की बढ़ती उपस्थिति है। दिखाता है कि ये चुनौतियाँ अलग-अलग नहीं, बल्कि एक-दूसरे से जुड़ी हैं, इसलिए उनका समाधान भी समेकित रणनीति माँगता है।

4.1 राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सीमा संबंधी चुनौतियाँ

भारत की सुरक्षा-चिंताएँ उसकी भौगोलिक स्थिति से जुड़ी हैं। चीन के साथ लगभग 3,400 किलोमीटर की अनिर्धारित सीमा और पाकिस्तान के साथ कश्मीर-विवाद सतत तनाव के स्रोत हैं। पंत (2010) बताते हैं कि भारत-चीन संबंधों में आर्थिक सहयोग के बावजूद सीमा-विवाद और रणनीतिक अविश्वास बना रहता है। कोहेन (2013) भारत-पाकिस्तान संबंधों को ऐसी प्रतिद्वंद्विता बताते हैं जो सीमा-पार आतंकवाद, परमाणु-प्रतिरोध और घरेलू राजनीति से गहराई से प्रभावित है।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

चेल्लानी (2011) एक अन्य आयाम की ओर ध्यान दिलाते हैं: हिमालयी जल-स्रोतों पर नियंत्रण। नदियों के प्रवाह से जुड़े प्रश्न भविष्य में सीमा-विवादों जितने ही संवेदनशील हो सकते हैं। इस प्रकार भारत को पारंपरिक सैन्य खतरों के साथ-साथ संसाधन-आधारित और असममित खतरों से भी निपटना है।

4.2 प्रमुख शक्तियों के साथ रणनीतिक संतुलन बनाए रखना

भारत की सबसे नाज़ुक चुनौती अमेरिका, चीन और रूस जैसी शक्तियों के साथ एक साथ संबंध साधना है। टेलिस (2012) चेतावनी देते हैं कि केवल गुटनिरपेक्षता की भाषा पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं; भारत को ठोस आर्थिक-सैन्य क्षमता बनानी होगी ताकि उसकी स्वायत्तता व्यवहार में टिकाऊ रहे। इसके विपरीत खिलनानी एवं अन्य (2012) तर्क देते हैं कि किसी एक शक्ति के साथ पूर्ण संरेखण भारत के हितों के प्रतिकूल होगा।

ओल्लापाली और राजगोपालन (2011) "व्यावहारिक चुनौती" की बात करते हैं, जिसमें भारत को आदर्शवादी रुख और ठोस राष्ट्रीय हितों के बीच संतुलन रखना पड़ता है। इस संतुलन के बिगड़ने का जोखिम यह है कि भारत किसी एक पक्ष का "जूनियर साझेदार" दिखे या कई पक्षों का विश्वास खो दे।

4.3 ऊर्जा सुरक्षा, व्यापार और आर्थिक निर्भरता

भारत अपनी तेल-आवश्यकता का बड़ा भाग आयात करता है, अतः वैश्विक ऊर्जा-बाज़ार की अस्थिरता सीधे उसकी अर्थव्यवस्था पर असर डालती है। कैप्लन (2010) के अनुसार हिंद महासागर वह जीवन-रेखा है जिससे होकर एशिया की ऊर्जा-आपूर्ति गुज़रती है, और इन समुद्री मार्गों की सुरक्षा भारत की आर्थिक सुरक्षा से अभिन्न है।

आर्थिक निर्भरता का प्रश्न व्यापार तक भी फैला है। भारत की कई विनिर्माण-शृंखलाएँ चीन से आयातित घटकों पर निर्भर हैं, जो सुरक्षा-प्रतिस्पर्धा के बीच संवेदनशीलता पैदा करता है। पंत (2010) इस विरोधाभास की ओर संकेत करते हैं कि जिस देश के साथ सामरिक प्रतिद्वंद्विता है, उसी के साथ गहन व्यापारिक संबंध भी हैं। इसलिए आपूर्ति-शृंखलाओं का विविधीकरण और घरेलू क्षमता-निर्माण विदेश नीति का अभिन्न हिस्सा बनते जा रहे हैं।

ऊर्जा-सुरक्षा का प्रश्न केवल तेल-आयात तक सीमित नहीं है; इसमें परिवहन-मार्गों की सुरक्षा, भंडारण-क्षमता और वैकल्पिक स्रोतों का विकास भी शामिल है। कैप्लन (2010) और ब्रूस्टर (2014) दोनों इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि समुद्री मार्गों पर किसी भी अवरोध का प्रभाव दूरगामी हो सकता है। इसलिए विदेश नीति को ऊर्जा-कूटनीति के साथ जोड़ना होगा, जिसमें विविध आपूर्तिकर्ताओं से दीर्घकालिक समझौते, सौर और अन्य नवीकरणीय ऊर्जा में साझेदारी तथा आपदा-स्थिति के लिए रणनीतिक भंडार शामिल हों। इससे बाहरी झटकों के प्रति भारत की संवेदनशीलता घट सकती है।

4.4 क्षेत्रीय अस्थिरता और भू-राजनीतिक तनाव

भारत के पड़ोस में राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक संकट और बाहरी शक्तियों की बढ़ती उपस्थिति क्षेत्रीय संतुलन को प्रभावित करती है। ब्रूस्टर (2014) ने दिखाया है कि हिंद महासागर क्षेत्र में भारत अपने प्रभाव-

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

क्षेत्र को बनाए रखने के लिए प्रयासरत है, जबकि अन्य शक्तियाँ बंदरगाहों और अवसंरचना के माध्यम से अपनी पहुँच बढ़ा रही हैं। फेयर (2010) अफ़गानिस्तान के संदर्भ में दर्शाती हैं कि भारत की क्षेत्रीय भूमिका भौगोलिक पहुँच की सीमाओं और पाकिस्तान-कारक से बाधित होती है।

इन परिस्थितियों में भारत के लिए "पड़ोसी पहले" की नीति को सफल बनाना एक कठिन लेकिन आवश्यक कार्य है, क्योंकि पड़ोस में अस्थिरता सीधे भारत की सुरक्षा और विकास को प्रभावित करती है।

5. भारत की विदेश नीति में संभावनाएँ एवं रणनीतिक अवसर

भारत की उपरोक्त चुनौतियों के साथ-साथ बदलता शक्ति-संतुलन भारत के लिए कई रणनीतिक अवसर भी खोलता है। सबसे पहले वैश्विक मंचों पर भारत की बढ़ती भूमिका और उसकी कोमल शक्ति, यानी लोकतंत्र, संस्कृति, प्रौद्योगिकी और प्रवासी समुदाय, का मूल्यांकन किया गया है। फिर रणनीतिक स्वायत्तता और बहुपक्षीय सहयोग को परस्पर पूरक बताया गया है, जो भारत को जोखिम बाँटने और विकल्प बढ़ाने में मदद करते हैं। इसके बाद आर्थिक कूटनीति, प्रौद्योगिकी और रक्षा सहयोग को एकीकृत रणनीति के रूप में देखा गया है। अंत में वैश्विक दक्षिण के नेतृत्व की संभावना पर विचार है, जिसमें खाद्य, स्वास्थ्य, जलवायु और डिजिटल पहुँच जैसे ठोस मुद्दे केंद्र में हैं। का निष्कर्ष यह है कि इन अवसरों का लाभ तभी मिलेगा जब भारत की घरेलू क्षमता और कूटनीतिक विश्वसनीयता साथ-साथ मज़बूत हों।

5.1 वैश्विक मंचों पर भारत की बढ़ती भूमिका

बहुध्रुवीय होती दुनिया में भारत को वैश्विक मंचों पर अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाने का अवसर मिला है। जी-20, ब्रिक्स और एससीओ जैसे मंच उसे विभिन्न शक्ति-केंद्रों के बीच सेतु बनने का अवसर देते हैं। नाई (2011) की "स्मार्ट शक्ति" की अवधारणा के अनुरूप, भारत की लोकतांत्रिक परंपरा, सांस्कृतिक विविधता, सूचना-प्रौद्योगिकी क्षमता और प्रवासी समुदाय उसकी कोमल शक्ति के प्रमुख स्रोत हैं। नार्लीकर (2013) के अनुसार यदि भारत वैश्विक सार्वजनिक वस्तुओं में अधिक योगदान दे तो उसकी वैधता और नेतृत्व-क्षमता और मज़बूत होगी।

कोमल शक्ति का प्रभाव तभी स्थायी होता है जब वह ठोस उपलब्धियों से समर्थित हो। नाई (2011) के अनुसार वैधता और आकर्षण दीर्घकाल में कठोर शक्ति जितने ही मूल्यवान हो सकते हैं। इसलिए भारत को अपनी लोकतांत्रिक और विकासात्मक उपलब्धियों को वैश्विक मंचों पर निरंतर और विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए।

5.2 रणनीतिक स्वायत्तता और बहुपक्षीय सहयोग

रणनीतिक स्वायत्तता भारत की विदेश नीति की केंद्रीय अवधारणा है। खिलनानी एवं अन्य (2012) इसे ऐसी क्षमता के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें भारत अपने हितों के अनुसार स्वतंत्र निर्णय ले सके और साथ ही अनेक साझेदारों से लाभ उठा सके। बाजपेयी (2014) के वर्गीकरण में भी स्वायत्तता-केंद्रित और यथार्थवादी दोनों धाराएँ भारतीय रणनीतिक चिंतन में महत्त्वपूर्ण दिखती हैं।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

बहुपक्षीय सहयोग इस स्वायत्तता का पूरक है, विरोधी नहीं। विभिन्न समूहों में भागीदारी से भारत जोखिम को बाँट सकता है और किसी एक धुरी पर निर्भरता घटा सकता है। यहाँ लेखक का आकलन है कि "बहु-संरेखण" तभी सफल होगा जब भारत अपनी घरेलू आर्थिक और सैन्य क्षमता भी साथ-साथ मज़बूत करे, अन्यथा लचीलापन केवल कूटनीतिक भाषा बनकर रह जाएगा।

5.3 आर्थिक कूटनीति, प्रौद्योगिकी और रक्षा सहयोग

आर्थिक कूटनीति भारत के लिए बहुआयामी अवसर खोलती है: व्यापार-समझौते, निवेश-आकर्षण, ऊर्जा-साझेदारी और प्रौद्योगिकी-हस्तांतरण। मैलोन (2011) के अनुसार भारत की बढ़ती आर्थिक क्षमता उसकी कूटनीतिक मोलभाव-शक्ति का आधार है। प्रौद्योगिकी और रक्षा क्षेत्र में विविध स्रोतों से सहयोग भारत को आपूर्ति-जोखिम से बचाता है और घरेलू रक्षा-उद्योग को बल देता है।

समुद्री सुरक्षा इस सहयोग का विशेष क्षेत्र है। मोहन (2012) और ब्रूस्टर (2014) दोनों हिंद महासागर में भारत की नौसैनिक क्षमता, तटीय साझेदारियों और समुद्री सहयोग की भूमिका पर बल देते हैं। इसलिए आर्थिक, तकनीकी और रक्षा कूटनीति को एकीकृत रणनीति के रूप में आगे बढ़ाना भारत के लिए लाभदायक है।

रक्षा-सहयोग के क्षेत्र में भारत के लिए अवसर संयुक्त अभ्यासों, प्रौद्योगिकी-साझेदारी और घरेलू उत्पादन के संयोजन में निहित है। मैलोन (2011) के अनुसार भारत की कूटनीति तब अधिक प्रभावी होती है जब वह आर्थिक विकास और सुरक्षा-हितों को एक साथ साधती है। इसी तरह मोहन (2012) समुद्री साझेदारियों को चीन के साथ प्रतिस्पर्धा में संतुलन का साधन मानते हैं। लेखक का मत है कि रक्षा-आयात पर निर्भरता घटाते हुए विश्वसनीय साझेदारों के साथ सह-उत्पादन को बढ़ावा देना भारत के लिए दीर्घकालिक रूप से अधिक लाभदायक होगा।

6.1 भारत की विदेश नीति की उपलब्धियों का मूल्यांकन

भारत की विदेश नीति की प्रमुख उपलब्धि यह रही है कि उसने बदलते शक्ति-संतुलन के बीच अपने निर्णय-स्वातंत्र्य को बनाए रखा है और कई शक्तियों के साथ एक साथ संबंध विकसित किए हैं। अमेरिका के साथ रणनीतिक निकटता, रूस के साथ पारंपरिक रक्षा-संबंध, पश्चिमी एशिया और पूर्वी एशिया के साथ आर्थिक जुड़ाव, तथा वैश्विक मंचों पर बढ़ती उपस्थिति इसके उदाहरण हैं। मैलोन (2011) द्वारा वर्णित सतर्क कूटनीति ने भारत को अनावश्यक टकरावों से बचाया है।

फिर भी, मूल्यांकन संतुलित होना चाहिए। टेलिस (2012) की आलोचना याद दिलाती है कि कूटनीतिक लचीलेपन का मूल्य तभी है जब उसके पीछे ठोस राष्ट्रीय क्षमता हो। नार्लीकर (2013) भी संकेत करती हैं कि वैश्विक भूमिका के विस्तार के लिए भारत को घरेलू संस्थागत क्षमता और नीतिगत स्पष्टता में निवेश करना होगा। अतः उपलब्धियाँ वास्तविक हैं, परन्तु उनका स्थायित्व क्षमता-निर्माण पर निर्भर है।

उपलब्धियों के मूल्यांकन में यह भी देखना आवश्यक है कि भारत की नीति ने किन क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम सफलता पाई है। पंत (2010) जैसे विश्लेषकों के अनुसार चीन के साथ सीमा और विश्वास का प्रश्न दशकों

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

बाद भी अनसुलझा है, जबकि कोहेन (2013) पाकिस्तान के संदर्भ में बार-बार रुकी हुई वार्ताओं की ओर संकेत करते हैं। इसी तरह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता का लक्ष्य अब तक अधूरा है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि भारत की सफलता चयनात्मक रही है: आर्थिक और बहुपक्षीय क्षेत्रों में प्रगति अधिक दिखती है, जबकि सीमा-विवाद और संस्थागत सुधार जैसे क्षेत्रों में प्रगति धीमी है।

6.2 चुनौतियों और अवसरों के बीच रणनीतिक संतुलन

चुनौतियाँ और अवसर एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं, बल्कि अंतर्संबंधित हैं। उदाहरणार्थ, चीन से सुरक्षा-चुनौती भारत को अन्य साझेदारों से रक्षा-सहयोग का अवसर देती है, पर वही सहयोग चीन के साथ संबंधों को और संवेदनशील बना सकता है। ऊर्जा-निर्भरता चुनौती है, पर वही निर्भरता विविध आपूर्तिकर्ताओं और नवीकरणीय ऊर्जा-साझेदारियों के लिए प्रोत्साहन भी बनती है।

ओल्लापाली और राजगोपालन (2011) का "व्यावहारिक चुनौती" का ढाँचा यहाँ उपयोगी है: भारत को हर विकल्प को आदर्श के बजाय लागत-लाभ और राष्ट्रीय हित की कसौटी पर परखना होगा। लेखक का निष्कर्ष है कि बहु-संरेखण की सफलता तीन शर्तों पर टिकी है: (क) विश्वसनीय आंतरिक आर्थिक-सैन्य क्षमता, (ख) साझेदारों के बीच स्पष्ट और सुसंगत संदेश, तथा (ग) पड़ोस में स्थिरता की सक्रिय कूटनीति।

चुनौतियों और अवसरों के पारस्परिक संबंध को तालिका 2 में संक्षेप में दर्शाया गया है। यह तालिका दिखाती है कि हर चुनौती के साथ एक संबंधित अवसर और उसके अनुरूप नीतिगत प्रतिक्रिया जुड़ी है।

तालिका 2: चुनौतियाँ, संबंधित अवसर और नीतिगत प्रतिक्रिया

प्रमुख चुनौती	संबंधित अवसर	अपेक्षित नीतिगत प्रतिक्रिया
सीमा और राष्ट्रीय सुरक्षा	विविध रक्षा साझेदारियाँ और प्रौद्योगिकी-सहयोग	सैन्य आधुनिकीकरण, घरेलू रक्षा-उत्पादन, विश्वास-निर्माण के उपाय
महाशक्तियों के बीच संतुलन	बहु-संरेखण से अधिक मोलभाव-शक्ति	स्पष्ट और सुसंगत संदेश, साझेदारियों की सीमाओं का निर्धारण
ऊर्जा, व्यापार और आर्थिक निर्भरता	आपूर्ति का विविधीकरण, नवीकरणीय ऊर्जा-साझेदारी	दीर्घकालिक ऊर्जा-समझौते, रणनीतिक भंडार, आपूर्ति-शृंखला विविधीकरण
क्षेत्रीय अस्थिरता	"पड़ोसी पहले" और हिंद महासागर में नेतृत्व	संपर्क-अवसंरचना, विकास-सहायता, समुद्री सहयोग
वैश्विक शासन में सीमित हिस्सेदारी	वैश्विक दक्षिण का नेतृत्व और संस्थागत सुधार की पैरवी	खाद्य, स्वास्थ्य, जलवायु और डिजिटल पहुँच पर ठोस पहल

7. निष्कर्ष

यह शोध-पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि बदलता वैश्विक शक्ति संतुलन भारत की विदेश नीति के लिए एक साथ चुनौती और अवसर है। एकध्रुवीय श्रेष्ठता के क्षरण और बहुध्रुवीयता के उभार ने भारत को

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

अधिक विकल्प और मोलभाव-शक्ति दी है, किंतु अमेरिका-चीन प्रतिस्पर्धा, सीमा-सुरक्षा, ऊर्जा-निर्भरता और क्षेत्रीय अस्थिरता जैसी चुनौतियाँ उसके विवेकपूर्ण निर्णयों की माँग करती हैं।

साहित्य के विश्लेषण से स्पष्ट है कि भारत की विदेश नीति ने आदर्शवादी गुटनिरपेक्षता से व्यावहारिक, हित-आधारित बहु-संरेखण की ओर यात्रा की है (गांगुली, 2010; खिलनानी एवं अन्य, 2012; मैलोन, 2011)। इस यात्रा की सफलता केवल कूटनीतिक लचीलेपन पर नहीं, बल्कि आर्थिक-सैन्य क्षमता, संस्थागत सुदृढ़ता और पड़ोस में विश्वास-निर्माण पर निर्भर करेगी (टेलिस, 2012; ब्रूस्टर, 2014)।

भविष्य में भारत यदि वैश्विक दक्षिण की आवाज़ बनते हुए नियम-आधारित और समावेशी विश्व-व्यवस्था का पक्षधर रहे, तो वह केवल एक उभरती शक्ति नहीं, बल्कि वैश्विक व्यवस्था का रचनात्मक भागीदार बन सकता है (आचार्य, 2014; नार्लीकर, 2013)।

संदर्भ सूची

1. आचार्य, ए. (2014). अमेरिकी विश्व-व्यवस्था का अंत. पॉलिटी प्रेस।
2. ओल्लापाली, डी., और राजगोपालन, आर. (2011). भारतीय विदेश नीति के समक्ष व्यावहारिक चुनौती। द वॉशिंगटन क्वार्टरली, 34(2), 145–162।
3. किसिंजर, एच. (2014). विश्व-व्यवस्था. पेंगुइन प्रेस।
4. कैप्लन, आर. डी. (2010). मानसून: हिंद महासागर और अमेरिकी शक्ति का भविष्य. रैंडम हाउस।
5. कोहेन, एस. पी. (2013). शताब्दी की ओर अग्रसर: भारत-पाकिस्तान की पहेली. ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूशन प्रेस।
6. खिलनानी, एस., कुमार, आर., मेहता, पी. बी., मेनन, पी., नीलेकणि, एन., राघवन, एस., सरन, एस., और वरदराजन, एस. (2012). गुटनिरपेक्षता 2.0: इक्कीसवीं सदी के लिए भारत की विदेश एवं सामरिक नीति. सेंटर फ़ॉर पॉलिसी रिसर्च।
7. गांगुली, एस. (संपादक). (2010). भारत की विदेश नीति: अतीत और भविष्य. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. चेल्लानी, बी. (2011). जल: एशिया का नया रणक्षेत्र. जॉर्जटाउन यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. ज़कारिया, एफ. (2011). अमेरिका-पश्चात विश्व: द्वितीय संस्करण. डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी।
10. टेलिस, ए. जे. (2012). गुटनिरपेक्षता की वापसी: पुराने विचारों को नए रूप में अपनाने के खतरे. कार्नेगी एंडाउमेंट फ़ॉर इंटरनेशनल पीस।
11. दुबे, एम. (2013). भारत की विदेश नीति: बदलती दुनिया का सामना. पियर्सन।
12. नाई, जे. एस., जूनियर. (2011). शक्ति का भविष्य. पब्लिकअफ़ेयर्स।
13. नार्लीकर, ए. (2013). उभरता भारत: किसके प्रति उत्तरदायी? इंटरनेशनल अफ़ेयर्स, 89(3), 595–614।
14. पंत, एच. वी. (2010). चीन सिंड्रोम: एक असहज संबंध से जूझना. हार्परकॉलिन्स इंडिया।

International Journal of Engineering, Science and Humanities
An international peer reviewed, refereed, open-access journal
Impact Factor 5.3 www.ijesh.com ISSN: 2250-3552

15. फेयर, सी. सी. (2010). अफ़गानिस्तान और उससे आगे भारत: अवसर और बाधाएँ. द सेंचुरी फ़ाउंडेशन।
16. बाजपेयी, के. (2014). भारतीय महारणनीति: चिंतन की छह धाराएँ। के. बाजपेयी, एस. बासित, और वी. कृष्णप्पा (संपादक), भारत की महारणनीति: इतिहास, सिद्धांत और प्रकरण (पृ. 113–150)। रूटलेज।
17. ब्रूस्टर, डी. (2014). भारत का महासागर: क्षेत्रीय नेतृत्व के लिए भारत के प्रयासों की कहानी. रूटलेज।
18. मैलोन, डी. एम. (2011). क्या हाथी नाचता है? समकालीन भारतीय विदेश नीति. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
19. मोहन, सी. आर. (2012). समुद्र मंथन: हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-चीन प्रतिद्वंद्विता. कार्नेगी एंडाउमेंट फ़ॉर इंटरनेशनल पीस।
20. हर्रेल, ए. (2013). उभार की कथाएँ: उभरती शक्तियाँ और तीसरी दुनिया का अंत? रेविस्ता दे इकोनोमिया पोलिटिका, 33(2), 203–221।